गड़रिये की कहानियाँ

क़यूम तंगरीकुलीयेव

ISBN 978-81-89719-04-3

मूल्य : 35 रुपये

पहला संस्करण : जनवरी, 2010

प्रकाशक

अनुराग ट्रस्ट

डी-68, निरालानगर

लखनऊ-226020

टाइपसेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फ़ाउण्डेशन

मुद्रक : क्रिएटिव प्रिण्टर्स, 628/एस-28, शक्तिनगर, लखनऊ

Gaderiye ki Kahaniyan, *Stories by* ***Qayum Tangrikuliyev***

गड़रिये का कुत्ता

छोटा गड़रिया ताज़ा नान लाने गाँव चला गया। गड़रिया अकेला रह गया। वह रेगिस्तान से नहीं डरता। आँखें मूँदकर रास्ता ढूँढ़ सकता है और अगर भेड़िये हमला कर दें तो बन्दूक़ उसके पास है और उसका सच्चा मित्र कुत्ता भी साथ है।

गड़रिया लाठी पर झुका किसी सोच में डूब गया। अचानक उसने देखा – बड़े-बड़े टीलों के ऊपर धुआँ-सा उठ रहा है, मानो कोई पाइप पी रहा हो। जब टीलों के ऊपर धुआँ-सा उठने लगता है तो इसका मतलब है आँधी आने वाली है।

गड़रिये ने भेड़ों को नीची जगह की ओर खदेड़ा। नीची जगह पर हवा धीमी होती है। कुत्ता भेड़ों के रेवड़ के चारों ओर भाग-भागकर उन्हें झुण्ड में इकट्ठा करने लगा। अगर भेड़ें डरकर इधर-उधर भागने लगें, तो फिर उन्हें कोई नहीं रोक सकता और झुण्ड में इकट्ठा नहीं कर सकता।

आँधी में भेड़ें सिर झुकाये, जिधर हवा चले उधर ही चलती जाती हैं। गर्वीला ऊँट, उल्टे, सीना ताने हवा के सामने चलता है।

शू-शू करती हवा चल रही थी। उड़ती रेत से अँधेरा छा गया था। सूरज नहीं दिख रहा था, हाथ को हाथ नहीं सूझता था।

गड़रिये ने कम्बल लपेटा और रेवड़ के पास ही लेट गया। आँधी और भी तेज़ होती जा रही थी। बिजली कड़की। भेड़ें उछल खड़ी हुईं और भाग चलीं। गड़रिया उनके पीछे भागा लेकिन आँधी ने उसे गिरा दिया। आँखों, नाक, कानों में रेत भर रही थी, दाँतों तले रेत किरकिरा रही थी। काली कोठरी की तरह अँधेरा था। गड़रिये ने आँधी ख़त्म होने तक वहीं पड़े रहने का फैसला किया।

सुबह होते-होते हवा धीमी पड़ गयी। गड़रिये ने रेत के ढेर के नीचे से निकलकर चारों ओर देखा – न भेड़ें थीं, न कुत्ता और न ही उनके पैरों के निशान... हवा ने सब साफ़ कर दिया था।

गड़रिये ने बहुत ढूँढ़ा, बहुत ढूँढ़ा – आख़िर उसे एक घण्टी मिली। ऐसी घण्टी रेवड़ के अगुआ बकरे के गले में टाँगी जाती है। उस मेढ़े को को सेरके कहते हैं। सेरके की घण्टी खोना बहुत बुरी बात है। घण्टी की आवाज़ दूर तक सुनायी देती है। अब वह

कैसे ढूँढ़े? सारे टीलों का चक्कर तो लगाया नहीं जा सकता।

गड़रिया जल्दी-जल्दी गाँव गया। उसने लोगों को जगाया। चार दिन तक वे भेड़ों के रेवड़ को ढूँढ़ते रहे, पाँचवें, दिन रेवड़ मिल गया। जानते हो, कहाँ? चरागाह से दो सौ किलोमीटर दूर।

भेड़ें एक पुराने, उजाड़ कुएँ के पास चर रही थीं और उनके पास ही कुत्ता था।

भेड़ों की गिनती की गई – सभी वहाँ थीं। शुक्र है कुत्ते का! पाँच दिन तक वह भूख, प्यास सहता रहा, लेकिन भेड़ों को छोड़कर कहीं नहीं गया, गड़रिये का इन्तज़ार करता रहा।

आक़बाई

आक़बाई का जन्म रेगिस्तान में हुआ और वहीं भेड़ों और गड़रियों के बीच उसने सारी ज़िन्दगी बितायी। वह भेड़ियों को मारता था और कभी भी भेड़ियों की चालों में नहीं आता था। कभी-कभी भेड़ियों का कोई धूर्त सरदार झुण्ड के दो हिस्से कर देता है। छोटा हिस्सा सामने से भेड़ों के रेवड़ पर हमला करता है – यह झूठा हमला होता है। भेड़िये कुत्तों को अपने पीछे भगा ले जाते हैं और इस बीच दूसरा, बड़ा झुण्ड रेवड़ पर पीछे से टूट पड़ता है। भेड़ों को मारकर भेड़िये अपना शिकार ले जाते हैं। आक़बाई भेड़ियों की चालें और भेड़ों की आदतें भी अच्छी तरह से जानता था। वह रेवड़ से किसी को अलग नहीं होने देता था। समय बीता और आक़बाई बूढ़ा हो गया। चरी-आक़ा कुत्ते को गाँव ले गये। वह चाहते थे कि आक़बाई हरियाली के बीच, पेड़ों की शीतल छाया में अपने आख़िरी दिन काटे।

रेगिस्तान वापस लौटते समय चरी-आक़ा ने आक़बाई को ज़ंजीर से बाँध दिया और

घरवालों से कहा कि वे उसे एक दिन तक न खोलें। आक़बाई सारा दिन और सारी रात छटपटाता और हूँकता रहा। अगले दिन जब उसकी ज़ंजीर खोली गयी, तो उसने खाने की तश्तरी की ओर देखा तक नहीं और सीधा भाग निकला। यह उसके जीवन का सबसे कठिन रास्ता था। निर्जल रेगिस्तान में अपने मित्र गड़रिये के बिना ढाई सौ किलोमीटर का रास्ता उसने तय किया।

डेरे पर पहुँचकर आक़बाई पानी की तश्तरी की ओर लपका और पूरे घण्टे भर चपड़-चपड़ पानी पीता रहा। फिर थका-माँदा, सिर झुकाये, पैर घसीटता अपने कुत्ताघर तक पहुँचा। वहाँ बैठे नौजवान कुत्ते को उसने दृढ़तापूर्वक वहाँ से भगा दिया।

चरी-आक़ा अपने बूढ़े कुत्ते को देख रहे थे और उनके गालों पर आँसू बह रहे थे। वह आक़बाई के पास आकर उकड़ूँ बैठ गये और उसके कान के पीछे खुजलाते हुये प्यार के साथ कुछ बुदबुदाने लगे, मानो माफ़ी माँग रहे हों।

आक़बाई किकिया रहा था और अपनी कटी दुम हिला रहा था।

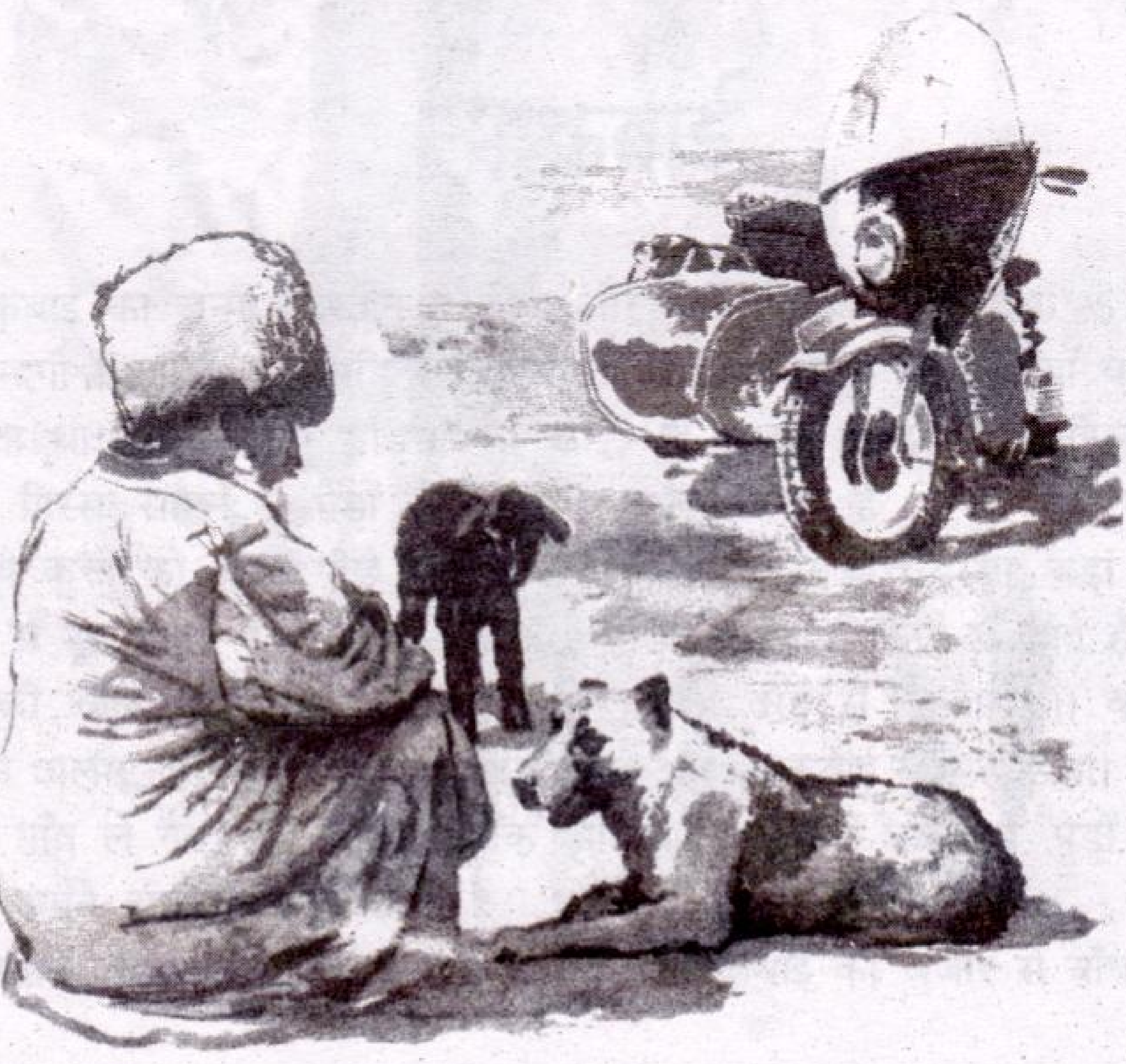

कैसे मैंने पानी ढोया

चरी-आक़ा ने बूढ़े कुत्ते के लिए काम ढूँढ़ लिया।

एक बार मैं उनके डेरे पर आया। चरी-आक़ा ने मुझे चाय पिलायी, खाना खिलाया और बोले :

"बेटा, अगर तुमने गड़रिया बनना है तो पूरे मन से काम सीखने में लग जाओ। गड़रियों का काम सीधा-सादा है, पर इसे सारी उम्र सीखना पड़ता है। हम चाहते हैं कि तुम काम में हमारी मदद करो। यह देख रहे हो, मैंने ऊँट पर दो मशकें लाद दी हैं। अभी मैं इसे बिठाता हूँ, तुम इस पर सवार होकर पास के कुएँ पर जाओ। उस कुएँ के पानी की चाय ज़्यादा स्वादिष्ट होती है। बस एक बात का ध्यान रखना बेटे, अगर ऊँट रास्ते में कहीं घास नोचने लगे या रास्ते से थोड़ा इधर-उधर हट जाये, तो उसे कुछ मत

कहना। न उसे मारना और न उससे उतरना ही। रास्ते में ऊब न लगे इसलिए आक़बाई को भी साथ लेते जाओ।"

सो हम तीनों – आक़बाई, ऊँट और मैं – पानी लेने चल दिये। चलते गये, चलते गये, पर कुआँ कहीं दिख ही नहीं रहा था। बाद में मुझे पता चला कि वह कुआँ बीस किलोमीटर दूर था। कोई मामूली रास्ता नहीं। और ऊँट मेरा कभी इधर घास नोचता, कभी उधर और कभी किसी टीले का चक्कर लगाता हुआ बढ़ता जा रहा था। आक़बाई रेत में बिल खोदकर रहने वाले छोटे-से जानवरों के पीछे भाग रहा था, खरगोशों को डरा रहा था।

रास्ते में हमें एक याशुली (बूढ़ा गड़रिया) मिले। "बेटे, रात सिर पर आई है और तुम कहाँ चले जा रहे हो?" उन्होंने पूछा, "कौन से डेरे से हो तुम?"

मैंने उन्हें सारी बात बता दी। याशुली डर ही गये : "कुआँ तो ज़्यादा दूर नहीं, लेकिन सूरज डूबने ही वाला है, कहीं किसी मुसीबत में न पड़ जाओ।" वह ऊँट को बिठाना चाहते थे, उसकी नकेल उन्होंने पकड़ी ही थी कि आक़बाई याशुली की पीठ पर उछला। मैं चिल्लाया : "हट जा!" लेकिन कुत्ते ने जैसे कुछ सुना ही नहीं। याशुली ने नकेल छोड़ दी और आक़बाई ने याशुली को छोड़ दिया। मेरा रेगिस्तान का जहाज़ आगे तैरने लगा। "जल्दी करो, बेटा," याशुली ने पीछे से चिल्लाकर कहा, "रात पड़ने वाली है। कहीं भटक न जाओ।"

"अच्छी बात है," मैंने जवाब में कहा, लेकिन मैंने चरी-आक़ा की बात गाँठ में बाँध रखी थी : ऊँट को मारना नहीं और न ही टिटकारना।

आख़िर हम कुएँ तक पहुँच गये। डेरे से कुत्ते हमारी ओर लपके, लेकिन अचानक चुप कर गये, दुम हिलाने लगे, मानो अपने लोग आये हों। कुत्तों के पीछे डेरे में से एक नौजवान निकला। मुझसे कोई पाँच साल बड़ा रहा होगा। मैं घमण्ड से भरा ऊँट पर बैठा था: "देखा, मैं कैसे रेगिस्तान में ऊँट पर चलता हूँ!" लेकिन उसने मेरी ओर यों सिर हिलाया, मानो ऊँट पर कोई बाँका नहीं, बल्कि मक्खी बैठी हो। ऊँट को बिठाकर उसने मशकों में पानी भरा और हाथ हिला दिया : "जाओ, मज़े में!" ऊँट खड़ा हो गया और वापस चल दिया। अब वह घास नहीं नोच रहा था, लम्बे-लम्बे डग भरता, जल्दी-जल्दी चल रहा था। आक़बाई इधर-उधर नहीं भाग रहा था, ऊँट की बग़ल में उसकी रक्षा करता हुआ चल रहा था। जब हम अपने डेरे पर लौटे तो रात पड़ चुकी थी। चरी-आक़ा

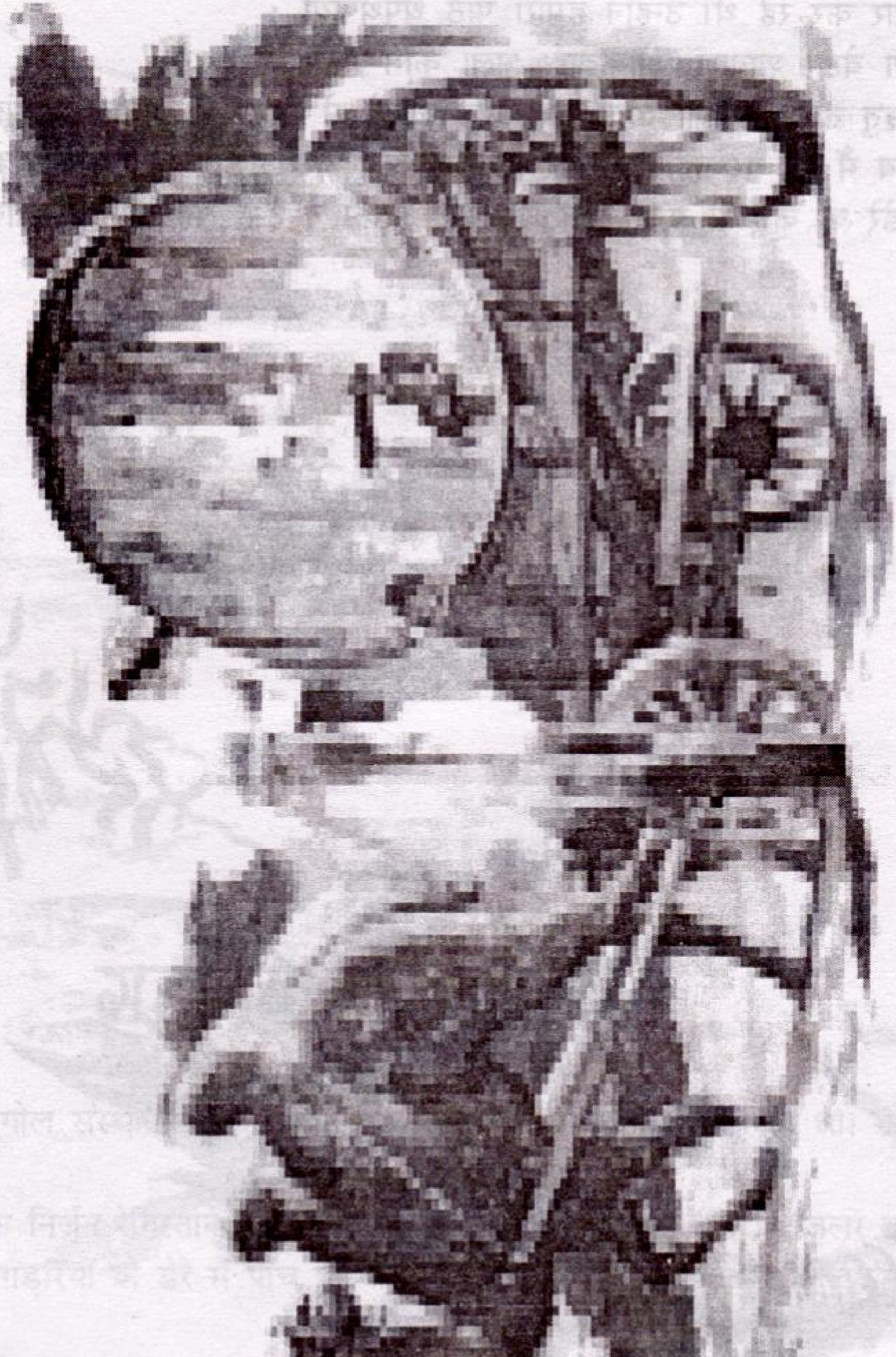

हमारा इन्तज़ार कर रहे थे। उन्होंने हमारी पीठ थपथपायी :

"शाबाश बेटा! शाबाश, आक़बाई! भला काम किया है तुमने।"

शरत ऋतु तक मैं पानी ढोता रहा। गाँव लौटने से पहले ही संयोगवश मुझे पता चला कि जब मैं डेरे पर नहीं था, तो आक़बाई और ऊँट अकेले ही गड़रियों के लिए पड़ोसी के डेरे के कुएँ से पानी लाते थे। चरी-आक़ा ने उन्हें यह काम सिखाया था।

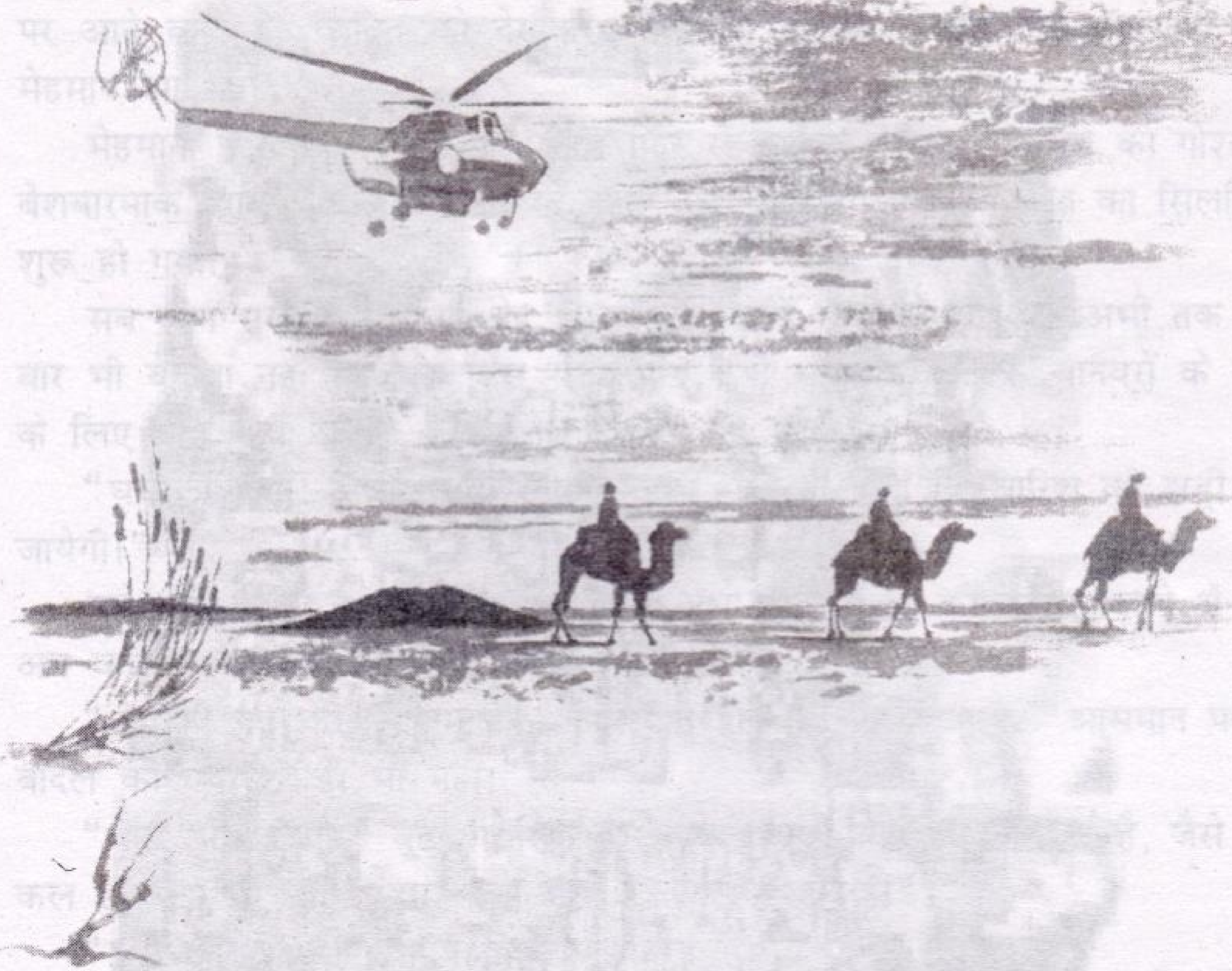

गड़रिये की आँखें

एक बार भूगोल संस्थान का अभियान दल क़राक़ूम रेगिस्तान में जा रहा था। ऊँटों का सफ़र था।

दो हफ़्ते तक निर्ज़न रेगिस्तान में चलने के बाद आख़िर अभियान दल किज़िलर कुएँ पर पहुँचा। यहाँ गड़रियों के डेरे में पाँच परिवार रहते थे : तीन क़जाख़ और दो तुर्कमान परिवार।

वैज्ञानिकों को क़राक़ूम के प्रसिद्ध आरक्षित क्षेत्र रेपेतेक जाना था, लेकिन गड़रिये

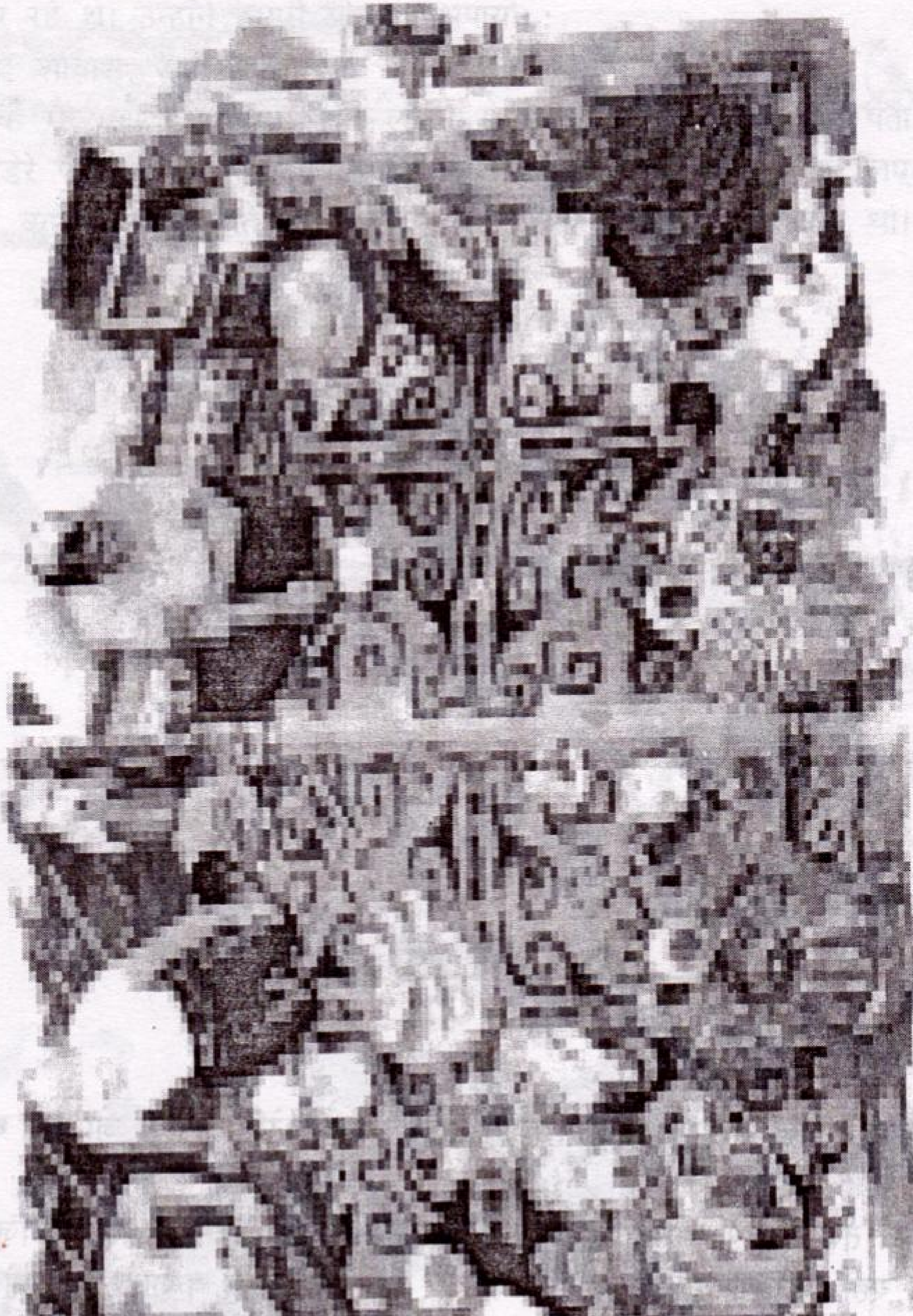

अपना बड़ा त्योहार मना रहे थे। उन्होंने कई सारे स्वादिष्ट पकवान पकाये थे और डेरे पर आने वाले हर व्यक्ति को देखकर ऐसे खुश हो रहे थे जैसे उनका सबसे प्यार मेहमान आ गया हो।

मेहमानों ने पहले शोरबा खाया और फिर सेवइयों के साथ पका भेड़ का गोश्त – बेशबारमाक खाया। खाने के बाद सब लोग चाय पीने लगे और बातचीत का सिलसिला शुरू हो गया।

सब लोग सूखे से चिन्तित थे। वसन्त ऋतु ख़त्म होने को थी और अभी तक एक बार भी बारिश नहीं हुई थी। घास सारी सूख गयी थी। डर था कि जानवरों के चरने के लिए कुछ नहीं रहेगा।

"घबराओ नहीं। अभी हमारा त्योहार ख़त्म भी नहीं होगा कि बारिश की झड़ी लग जायेगी।"

यह चरी-आक़ा ने कहा था। वह अभी-अभी अपने रेवड़ को डेरे पर लाये थे और अब क़ालीन पर बैठ रहे थे।

"आपको यह कैसे मालूम है?" अभियान दल के नेता ने पूछा, "आसमान पर तो बादल का एक टुकड़ा भी नहीं।"

"वाह, मेरे बच्चो!" बूढ़ा गड़रिया हँस दिया, "मुझे यह वैसे ही पता है, जैसे मुझे कल ही पता था कि तुम्हारा दल आज क़िज़िलर पहुँचेगा।"

"चरी-आक़ा, आप तो पहेलियाँ बुझा रहे हैं।"

"कैसी पहेली! मैं तुम्हारे निशानों पर रेवड़ को यहाँ लाया हूँ। डर रहा था कि कहीं त्योहार पर देर से न पहुँचूँ। मेरे बच्चो, तुम कई साल तक स्कूल-कॉलेज में पढ़े हो, और मेरी सारी ज़िन्दगी ही मेरी पढ़ाई है। क़राक़ूम मेरा मास्टर है। दस साल पहले मैंने तुम्हारे दल को अपना ऊँट बेचा था और आज वह तुम्हें यहाँ लाया है। मैं उसके पैरों के निशान देखकर यह जान गया। इन्सान को शक्ल से पहचाना जाता है और जानवर को पैरों के निशान से।

"चरी-आक़ा, अब यह रहस्य भी खोल दीजिये : आपको कैसे पता है कि जल्दी ही बारिश होगी।"

"मैं जब भेड़ों को कुएँ की ओर खदेड़ रहा था तो वे झुण्ड बना-बनाकर और सिर झुकाकर चल रही थीं, जैसे कि तेज़ हवा हो... आयेगी बारिश, ज़रूर आयेगी।"

लोगों को चरी-आक़ा की बात पर ख़ास विश्वास नहीं आया। पहले की ही तरह सूरज आग उगल रहा था। न हवा का कोई झोंका आ रहा था, न बादल का टुकड़ा दिख रहा था। लेकिन चरी-आक़ा का शकुन सच निकला।

अभी चायपान ज़ारी ही था कि रेगिस्तान पर तेज हवा चली। हवा घने बादल लायी और बादलों ने ज़ोरों से पानी बरसाया।

अभियान दल गीली रेत पर रेपेतेक जा रहा था। देखते-देखते ही रेगिस्तान में हरियाली छा गयी, फूल खिल उठे।

गीली रेत से नदी की गन्ध आ रही थी।

ऊँट और लड़का

ऊँट का नाम था – बायीर यानी टीला। इतना बड़ा और ताक़तवर था वह।

जब बायीर बूढ़ा हो गया, तो मालिक ने उसे घर से नहीं निकाला। अब वह उससे काम नहीं लेता था, सोचता था, बूढ़ा ऊँट आराम करे, यही अच्छा है। लेकिन ऊँट उदास रहने लगा। वह लोगों के प्यार, नेक हाथों और प्यार भरे शब्दों का आदी हो गया था। उसे काम के बिना पड़ा रहना बुरा लगता था।

एक दिन बायीर के पास एक लड़का आया और उसे रोटी का टुकड़ा देकर बोला :

"मेरा नाम मुराद है और तुम्हारा बायीर। चलो हम दोनों दोस्त होंगे।"

मुराद रोज़ाना ऊँट के पास आता, उसे रोटी देता और उसकी गरदन सहलाता। और ऊँट अपने दोस्त को खुश करने के लिए ज़मीन पर लेट जाता। वह इस तरह मुराद को सवारी करने के लिए बुलाता था।

मई के अन्त में जब रेगिस्तान में घास सूख गई, तो मुराद बायीर को लकड़ियाँ बटोरने अपने साथ ले जाने लगा। रेगिस्तान की पतली-पतली लकड़ियों के मोटे-मोटे से गट्ठर हल्क़े ही होते थे। लेकिन बूढ़ा ऊँट उन्हें बड़े गर्व से सिर ऊँचा किये, सीना ताने ढोता था, क्योंकि वह फिर से काम कर रहा था, फिर से लोगों की मदद कर रहा था।

एक दिन वे दूर के झाड़ पर गये। यहाँ बहुत सी सूखी टहनियाँ थीं। मुराद बहुत खुश था, वह तब तक काम करता रहा, जब तक कि सूरज सिर के ऐन ऊपर नहीं आ गया। बहुत गर्मी हो गयी। मुराद ने पानी पीना चाहा और तभी उसने देखा कि वह पानी की बोतल घर भूल आया है। घर दूर था, सो मुराद ने फ़ैसला किया कि वह सूखी झील पर होता हुआ घर लौटेगा। मुराद जानता था कि वहाँ पर ऐसे गड्ढ़े हैं, जिनमें पानी रह गया है।

सूखी झील दूर से ही दिख रही थी। वह धूप में शीशे की तरह चमक रही थी। यहाँ ज़मीन का नमक निकल आया था।

बायीर पहले तो सूखी झील पर चलता रहा, लेकिन फिर अड़ गया।

"देखो, घर अभी दूर है, पानी के बिना मुश्किल होगी," मुराद उसे चेता रहा था।

वह खुद पानी के गड्ढे पर जाना चाहता था, लेकिन बायीर ने अपने होंठों में उसकी कमीज़ पकड़कर उसे अपनी ओर खींचा।

"क्या हो गया तुम्हें आज!" मुराद हैरान हुआ, "चलो, पानी पीते हैं, यह सब गरमी की वजह से है।"

बायीर ने दोस्त की बात नहीं सुनी।

लड़के के पैरों के नीचे ज़मीन ऊपर से सूखे गुँधे आटे की तरह डोल रही थी, लेकिन उसने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया। पानी वाले गड्ढे तक और बस दस क़दम रह गये थे। अचानक मुराद घुटनों तक ज़मीन में धँस गया। उसने झटका लगाया लेकिन टाँगें बाहर नहीं निकलीं। वह फ़ौरन समझ गया कि अधिक गहरा धँसता जा रहा है। वह पेट के बल लेट गया, लेकिन उसके नीचे ज़मीन दब गयी और दरारों में से पापनी रिसने लगा।

"बायीर!" हताश मुराद चिल्लाया।

ऊँट जानता था कि उसका दोस्त किस ख़तरे में फँस गया है। उसने सूखी झील की डोलती ज़मीन पर कुछ क़दम रखे, फिर पेट के बल लेटकर रेंगने लगा।

बायीर के नीचे ज़मीन बैठती जा रही थी, लेकिन वह जहाँ तक हो सकता था मुराद के पास पहुँच गया और दाँतों से उसकी क़मीज़ पकड़कर, उस भयानक जगह से पीछे हटता हुआ, लड़के को खींचने लगा।

गड़प – दलदल में आवाज़ हुई, लेकिन तब तक मुराद उसके चंगुल से छूट चुका था।

वह रेंगता हुआ बायीर के पास पहुँचा, और ऊँट का सिर अपनी बाँहों में भर अपना सिर उससे रगड़ने लगा।

"मुझे माफ़ कर दो बायीर," लड़का अपने बुद्धिमान मित्र से क्षमा माँग रहा था। "चलो, अब जल्दी-जल्दी यहाँ से भागें।"

ऊँट अपनी भली और दुखभरी आँखों से लड़के को देख रहा था और हिल-डुल नहीं रहा था। मुराद ने देखा कि ऊँट के चारों ओर सूखी झील की ज़मीन धँस गयी है। उसने लड़के को छोड़ दिया था, लेकिन अब ऊँट को हड़पना चाहती थी।

"बायीर! प्यारे दोस्त, थोड़ा सब्र करो!" मुराद ने उसकी पीठ से लकड़ियों का गट्ठर उतार लिया, कई लकड़ियाँ ऊँट के पेट के नीचे घुसा दीं और पल भर का समय भी खोये बिना, बेतहाशा घर की ओर भागा।

उसे याद नहीं वह कितनी बार गिरा था, हाँ गिरा बहुत बार था। वह क्षण भर भी आराम करने के लिए लेटा नहीं, बल्कि रेंग-रेंगकर आगे बढ़ता रहा, क्योंकि दलदल किसी की राह नहीं देखेगा।

आख़िरी दम से उसने झोंपड़ी का दरवाजा खोला और बुदबुदाकर कहा :

"बायीर को बचाओ! उसने मुझे बचाया है।"

सुबह आँख खुलने पर मुराद ने देखा कि झोपड़ी में कोई भी नहीं है, सब अपने-अपने काम पर चले गये हैं।

"बायीर!" लड़के को याद आया और वह एक झटके में उठ खड़ा हुआ। पैर ठीक से नहीं पड़ रहे थे, सिर चक्कर खा रहा था, लेकिन मुराद जैसे-जैसे दरवाजे तक पहुँच गया और बाहर निकल आया।

बायीर झोपड़ी के पास ही खड़ा था और उसके सामने घास का ढेर रखा था। बायीर ने घास चरना छोड़कर लड़के की ओर सिर मोड़ा। मुराद हँस पड़ा : बायीर के मुँह से घास के तिनके चारों ओर निकले हुये थे, जैसे कि मूँछें हों।

गड़रिये का एक दिन

कूली के पिता याज़ख़ान गड़रिया थे, याज़ख़ान के पिता और उनके पिता के पिता भी गड़रिये थे...

रेगिस्तान में दूर से ही दिख रही है एक बड़ी-सी आकृति। यह गड़रिया कूली अपनी घुमावदार लाठी पर झुका खड़ा है। उसके सामने टीलों के ऊपर है साँझ का थकामाँदा सूरज। गड़रिया और सूरज दोनों एक-दूसरे को अच्छी तरह से समझते हैं। दोनों का काम मिलता-जुलता जो है।

कूली के सामने मैदान में भेड़ें खड़ी हैं। डेढ़ हज़ार भेड़ें। कूली अकेला है, उसके साथ बस दो कुत्ते हैं – सकर और बसर। सूरज धरती तक झुक आया है, लेकिन रेत अभी भी आग उगल रही है। गर्मियाँ अभी बीती भी नहीं, और कूली काला पड़ गया है, सूख गया है, लेकिन उसे सूरज से कोई शिकायत नहीं। कूली को हवा से भी कोई

शिकायत नहीं और न ही आँधी से। उसका काम ही ऐसा है – बालू और बर्फ़ की चपेटें, वसन्त की ठण्डी बारिश और भेड़ियें के दाँत – सब कुछ उसे सहना पड़ता है।

सुबह कोई नौ बजे ही कूली ने भेड़ों को पानी पिला दिया था। फिर भेड़ें, कुत्ते और इन्सान – सब आराम करते रहे, दोपहर की तपस बीतने का इन्तज़ार करते रहे। और ज्यों ही सूरज क्षितिज की ओर झुकने लगा, रेवड़ के अगुआ बकरे - सेरके – की घण्टी बजने लगी और रेवड़ चल दिया।

कूली ध्यान से घण्टी की आवाज़ सुनता है। सेरके रेवड़ को मोड़ रहा है – उसे अच्छे चारे का पता चल गया है। भेड़ें चलती-चलती चरती जा रही है। कूली थोड़ी दूर तक उनके पीछे चलता है और फिर रुक जाता है। लाठी पर झुककर वह सूर्यास्त का दृश्य देखने लगता है। सूरज डूब रहा है। कूली से विदा लेते हुए सूरज की लाल किरणें आखिरी बार झिलमिलाती हैं और फिर सूरज आराम करने चला जाता है। सूरज का आराम शुरू होता है और कूली का काम।

"कल फिर मिलेंगे," कूली सूरज से कहता है।

सारे दिन में यह पहले शब्द हैं, जो उसके मुँह से निकले हैं।

नीची जगहों पर अँधेरा फैलने लगा है। अँधेरा बढ़ता जाता है और फिर आसमान पर भी छा जाता है। और तभी वहाँ गोल-गोल चाँद निकल आता है। चाँद चारों ओर नज़र दौड़ाता है, छायाएँ इधर-उधर भागती हैं, अँधेरा बिलों में खिसक जाता है, वहाँ छिप जाता है।

जब चाँद टीलों के ऊपर पहुँचता है, तो कूली अपना गधा पकड़ता है, जो रेवड़ के साथ चर रहा है, और उसके गले में घण्टी बाँध देता है। गधे पर कुत्तों पर इन्सान के लिए खाने का सामान और पानी लदा हुआ है। अगर रात को गधा रेवड़ से पीछे रह गया तो भूखे रहना पड़ेगा और प्यास सहनी पड़ेगी।

आखिर रेत ठण्डी पड़ जाती है। रेगिस्तान में शीतलता की धार बहती है। बालू के टीले चाँदनी में दूध से धुले लगते हैं। इतना उजाला है कि पैरों तले बालू-कणिकाएँ हिम-कणों सी झिलमिलाती हैं।

भेड़ें सिर उठाये बिना लगातार चरती जाती हैं।

कुत्ते कूली के पैरों के पास लेट जाते हैं। वे अपने थूथन पंजों पर टिका लेते हैं। आँखें उनकी सो रही हैं और कान जरा-सी भी सरसराहट होने पर फड़क उठते हैं, जैसे

हवा चलने पर पत्तियाँ। वे बिल्कुल निश्चिंत से लेटे हुए हैं।

...चाँदनी रात है। ऐसी रात में भेड़िये रेवड़ पर हमला करने की हिम्मत नहीं कर सकते।

भेड़ चुराना भी बहुत चालाकी का काम है। भेड़ें बहुत डरपोक होती हैं और सदा सतर्क रहती हैं। रेवड़ के मत्थे हमला करने का मतलब है खुद को भगाना। पीछे से भी नहीं आया जा सकता – यहाँ गड़रिया रहता है। और बग़लों की रखवाली कुत्ते करते हैं। दायें बग़ल की सकर और बायें की बसर।

भेड़ें चर रही हैं, कुत्ते ऊँघ रहे हैं और इन्सान चाँद को देख रहा है। चाँद आसमान में ऊँचा चढ़ गया है, कहीं से मन्द-मन्द हवा आ रही है। मन चाँद को देखकर मुस्कुराता है और चाँद इस दुनिया को देखकर।

आधी रात के क़रीब भेड़ें चरना छोड़ देती हैं, खुली जगह पर आराम करने के लिए इकट्ठी हो जाती हैं। कुछ देर खड़ी रहती हैं, फिर लेटने लगती हैं।

कूली रेवड़ में से गधे को निकाल लाता है और उस पर से खाने का सामान और पानी उतारता है। झाड़ियों की सूखी टहनियाँ तोड़ता है और अलाव जलाता है।

ताँबे की पतीली में पानी भरकर उसे आगे पर चढ़ाता है। कुत्तों के लिए पानी पीने का रबड़ का बर्तन है। सकर उठ जाता है और बसर लेटे-लेटे ही पानी पी लेता है।

अलाव यों तो छोटा-सा ही है। लेकिन उससे आँखें चौंधियाती हैं। कूली आग की ओर हाथ बढ़ाता है, उससे गरमी मिलती है।

पतीली में पानी खौलने लगता है। कूली उसमें ढेर सारी चाय डालता है। तेज़ चाय से फुर्ती आती है।

अलाव से कोई दस मीटर दूर कूली अपने चोग़े पर चाय पीने बैठता है। अलाव के पास ज़्यादा देर बैठना ख़तरनाक है। केवल इन्सान ही आग नहीं सेंकना चाहता, रेगिस्तान के सब दुष्ट कीड़े-मकोड़े – मकड़े-मकड़ियाँ, कनखजूरे और काली ज़हरीली मकड़ियाँ भी – गर्मी पाना चाहते हैं। अपना ज़हरीला डंक उठाये बिच्छू सीधा रोशनी की ओर बढ़ता है।

पहला प्याला कूली वापस पतीली में उँड़ेल देता है ताकि चाय अच्छी तरह से बन जाये, फिर वह खुद पीने लगता है, एक के बाद एक प्याला पीता जाता है... शरीर की प्यास बुझती जाती है, रगों में खून तेज़ी से दौड़ने लगता है।

अलावा की आखिरी लकड़ियाँ जल जाती हैं और वह ठण्डा पड़ जाता है। चारों ओर सब कुछ शान्त हो गया है। चाँदनी भी मानों मन्द पड़ गयी है। कुत्ते रेवड़ का चक्कर लगाने चले गये हैं। भेड़ें सो रही हैं।

कुली अपनी घुमावदार लाठी सिर के नीचे रखता है – यही उसका तकिया है। और फिर आसमान को निहारने लगता है। वह रहा पथप्रदर्शक ध्रुव तारा। और वह है सप्तऋषि तारा-मण्डल, सारी रात वह ध्रुव तारे का पीछा करता है, उससे आगे निकलना चाहता है। सुबह होते-होते वह ध्रुव तारे के नीचे से आगे निकल जायेगा। और तब टीलों के ऊपर कृतिका नक्षत्र चमक उठेगा।

याज़खान ने अपने बेटे को तारे देखना सिखाया था। अनपढ़ याज़खान का तारों का ज्ञान किसी खगोलशास्त्री से कम नहीं था। एक बार उन्होंने कूली को कहा था:

"बेटा, अगर तुम्हें रेगिस्तान में रहना है, तो तुम्हें रेगिस्तान को अपनी हथेली की तरह जानना चाहिए और आपनी पाँच उँगलियों की तरह आसमान को। जो आसमान को नहीं जानता, वह रेगिस्तान को नहीं जान सकता।"

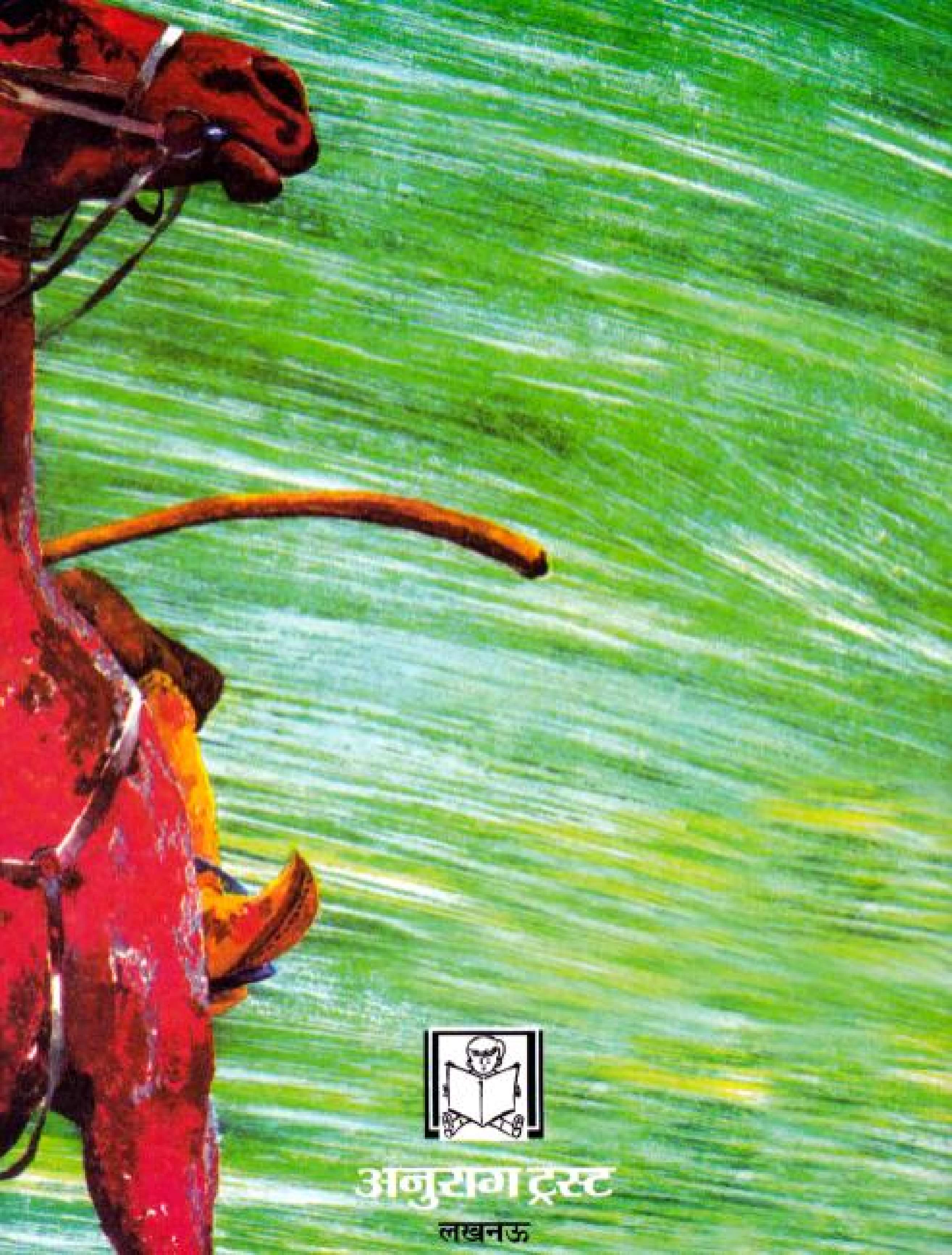

अनुराग ट्रस्ट
लखनऊ